

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 30: यदुवंश का अन्त

5 October 2026



जब द्वारका के ऊपर भयावह अपशकुन मंडराने लगते हैं, श्रीकृष्ण यदुवंश के वृद्धजनों को प्रभास तीर्थ ले जाते हैं, जहाँ एक प्राचीन शाप अपने निर्धारित अन्त को प्राप्त होता है; और जब उनके अपने कुटुम्बीजन इस संसार से विदा हो चुकते हैं, भगवान् एक पवित्र पिप्पल वृक्ष के नीचे दिव्य शान्ति में विराजमान होकर उस शिकारी को आशीर्वाद देते हैं जिसका बाण उनके चरण को छूता है, और अपने सारथी को अपने अन्तिम प्रेम-वचनों के साथ विदा करते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

स्वागत है श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं तथा शिक्षाओं के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। उद्धव बदरिकाश्रम जा चुके हैं, और राजा परीक्षित अब सुकदेव गोस्वामी से पूछते हैं कि इसके पश्चात् भगवान् ने द्वारका में क्या किया। मुनि इस सम्पूर्ण स्कन्ध के सबसे गम्भीर क्षण का उत्तर देते हैं — वह क्षण जब एक प्राचीन शाप पूर्ण होता है, और भगवान् स्वयं, पूर्ण स्वतन्त्रता से, अपने पार्थिव स्वरूप को त्याग देते हैं।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण

- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 30 (त्रिंश प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: यदुवंश का अन्त
- प्रधान वक्ता: सुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए; कथा के भीतर, श्रीकृष्ण यदुओं से, शिकारी जरा से, तथा अपने सारथी दारुक से बोलते हैं
- प्रधान श्रोता: राजा परीक्षित; कथा के भीतर, यदु-वृद्धजन, जरा, तथा दारुक
- मुख्य स्थान: द्वारका; प्रभास तीर्थ जहाँ सरस्वती सागर से मिलती है; तथा समीप के एक पिप्पल वृक्ष का मूल
- केन्द्रीय विषय: ब्राह्मणों के शाप की यदुवंश के अन्त में पूर्ति, बलराम का योग द्वारा प्रस्थान, तथा भगवान् का स्वयं का अन्तर्धान
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 30, श्लोक 1-50
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 29 में, श्रीकृष्ण ने उद्धव को आत्मा के विषय में अपना उपदेश पूर्ण किया और उन्हें बदरिकाश्रम भेज दिया। उद्धव ने उनके चरणों में प्रणाम किया और अश्रुपूर्ण नेत्रों से विदा ली, उनका संशय मिट चुका था। यह अध्याय अब द्वारका की ओर मुड़ता है, जहाँ परीक्षित पूछते हैं कि प्रिय भक्त के जाने के पश्चात् भगवान् तथा उनके कुटुम्बियों का क्या हुआ।

द्वारका पर अपशकुन

राजा परीक्षित ने पूछा: उद्धव वन को जा चुके; तब भगवान्, समस्त प्राणियों के पिता, ने द्वारका में आगे क्या किया? यदुओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने उस देह को, जो प्रत्येक नेत्र का आनन्द थी, कैसे त्यागा? (श्लोक १-३)

सुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया कि आकाश में, पृथ्वी पर तथा वायुमण्डल में भयंकर अपशकुन प्रकट होने लगे। उन्हें देखकर, श्रीकृष्ण ने सुधर्मा नामक सभाभवन में एकत्र यदु-वृद्धजनों से कहा।

श्रीभगवानुवाच

एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ।

मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

śrī-bhagavān uvāca ete ghorā mahotpātā dvārvatyāṁ yama-ketavaḥ muhūrtam api na stheyam atra no yadu-puṅgavāḥ

अर्थ: भगवान् ने कहा: “द्वारका पर प्रकट हो रहे ये भयंकर अपशकुन इसके विनाश की घोषणा करते हैं। हे यदुश्रेष्ठो, अब हमें यहाँ क्षण भर भी नहीं ठहरना चाहिए।” (स्कन्ध 11, अध्याय 30, श्लोक 5)

उन्होंने कहा कि स्त्रियों, बालकों तथा वृद्धों को तुरन्त शंखोद्धार नामक पावन स्थान भेज दिया जाए, जबकि पुरुष साथ मिलकर प्रभास चलें, जहाँ सरस्वती नदी पश्चिम की ओर मुड़कर सागर में मिलती है।



द्वारका पर भयंकर अपशकुन देखकर, श्रीकृष्ण सुधर्मा सभाभवन में यदु-वृद्धजनों को तुरन्त प्रभास प्रस्थान करने की चेतावनी देते हैं (श्लोक 5)।

प्रभास की यात्रा

प्रभास में, भगवान् ने आदेश दिया, वे पावन नदी में स्नान करें, उपवास रखें, तथा पूर्ण एकाग्रचित्त से देवताओं की पूजा करें, और ब्राह्मणों को गौ, भूमि, स्वर्ण तथा वस्त्र भेंट कर सम्मानित करें। देवताओं, ब्राह्मणों तथा गौओं की ऐसी पूजा, उन्होंने कहा, अमंगल को दूर करने का सबसे सुनिश्चित मार्ग तथा वास्तविक सुख-प्राप्ति का सर्वोच्च साधन है (श्लोक ९)।

यह सुनकर, यदु-वृद्धजनों ने “तथास्तु” कहकर नौका तथा रथों द्वारा प्रभास की यात्रा की, और वहाँ गहरी भक्ति से भगवान् द्वारा आदिष्ट प्रत्येक विधि सम्पन्न की।

शाप जागृत होता है

तत्पश्चात्, नियति द्वारा उनकी बुद्धि पर अधिकार कर लिए जाने से, एकत्र वीरों ने मैरेयक नामक एक प्रबल मादक पेय का भरपूर पान किया, जिसका धुआँ ही बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है। मद से उन्मत्त तथा भगवान् की स्वयं की मोहिनी शक्ति से मोहित, वे महान् वीर घोर संघर्ष में पड़ गए।

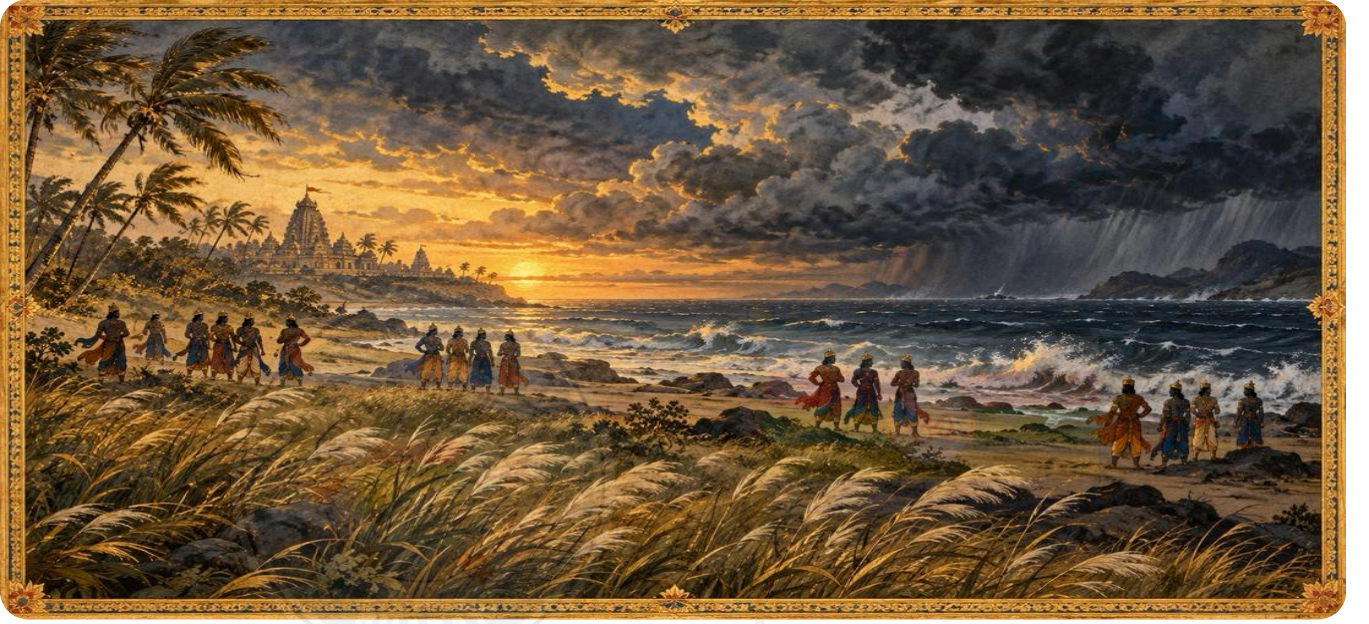
महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ।

कृष्णमायाविमूढानां सङ्घर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥

mahā-pānābhīmattānām vīrāṇām dṛpta-cetasām kṛṣṇa-māyā-vimūḍhānām saṅgharṣaḥ su-mahān abhūt

अर्थ: उन वीरों में — प्रबल मद से उन्मत्त, अहंकार से स्फीत, तथा श्रीकृष्ण की मोहिनी शक्ति से मोहित — एक अत्यन्त भीषण संघर्ष उत्पन्न हुआ। (स्कन्ध 11, अध्याय 30, श्लोक 13)

शीघ्र ही शस्त्र उठा लिए गए, और कुटुम्बीजन परस्पर एक ऐसे मोह में उलझ गए जिसे वे स्वयं भी न देख सके — पुत्र पिताओं के विरुद्ध, भाई भाइयों के विरुद्ध, मित्र मित्रों के विरुद्ध, दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक, भोज तथा सात्वतों का सम्पूर्ण समुदाय उसी मोहमयी आँधी में फँस गया (श्लोक १४-१९)।



प्रभास में, एक प्राचीन शाप से अभिभूत होकर, यदु वीर मद तथा भगवान् की मोहिनी शक्ति से मोहित होकर घोर संघर्ष में पड़ जाते हैं (श्लोक 13)।

एक नरकट वज्र बनते हैं

जब शस्त्र समाप्त हो गए, यदुओं ने उस तट पर उगी लम्बी घास उठा ली — वह घास जो बहुत पहले, ब्राह्मणों के शाप के आरम्भ में सागर में फेंके गए लौह-चूर्ण से उगी थी। क्रोध में गृहीत होते ही, वह कोमल घास वज्र के समान कठोर हो गई।

ता वज्रकल्पा ह्यभवन् परिघा मुष्टिना भृताः ।

जघ्नुर्द्विषस्तैः कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते ॥ २१ ॥

tā vajra-kalpā hy abhavan parighā muṣṭinā bhṛtāḥ jaghnur dviṣas taiḥ kṛṣṇena vāryamāṇās tu tam ca te

अर्थ: उनकी मुष्टियों में दृढ़ता से थामी गई वे घास की पत्तियाँ लौह-गदाओं के समान हो गईं; उनसे वीर एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे, और जब स्वयं श्रीकृष्ण ने उन्हें रोकना चाहा, तो मोहवश वे उन पर भी टूट पड़े। (स्कन्ध 11, अध्याय 30, श्लोक 21)

श्रीकृष्ण तथा बलराम को भी शत्रु मानकर, उन्मत्त यदुओं ने उन्हें भी मारने का संकल्प कर लिया, और वे दोनों प्रभु उसी घास की मुट्टियों से उनका सामना करने लगे। ब्राह्मणों के शाप की प्रचण्डता, भगवान् की मोहिनी शक्ति से कार्य करती हुई, सम्पूर्ण कुल को उसी प्रकार लील गई जैसे बाँसों की रगड़ से उत्पन्न अग्नि सम्पूर्ण वन को भस्म कर देती है (श्लोक २२-२४)।

यह भगवान् की इच्छा से परे कोई दुर्घटना नहीं थी। वे इसी प्रयोजन से अवतरित हुए थे — पृथ्वी के भार को हलका करने के लिए — और अब पूर्ण हो रहा वह शाप स्वयं उन्हीं की अनुमति से रचा गया साधन था। अपने कुटुम्बीजनों को इस प्रकार विदा होते देख, श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि उनका कार्य अब सम्पूर्ण हो चुका है (श्लोक २५)। जो हमें विनाश प्रतीत होता है, वह वास्तव में भगवान् का अपने ही जनों को, प्रत्येक की नियति के अनुसार, बुला लेना था — क्योंकि भगवान् कभी घटनाओं के शिकार नहीं होते, वे सदैव उनके रचयिता होते हैं।

बलराम का अनन्त में प्रत्यागमन

सागर-तट पर खड़े होकर, बलराम अपने भीतर की ओर मुड़े। परम आत्मा से एकत्व के योग में लीन होकर, उन्होंने अपनी आत्मा को अपनी ही परम आत्मा में स्थिर कर दिया और शान्तिपूर्वक उस मानव-देह को त्याग दिया जिसे उन्होंने धारण किया था।

रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ।

तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ २६ ॥

rāmaḥ samudra-velāyāṁ yogam āsthāya pauruṣam tatyāja lokam mānuṣyaṁ saṁyōjyātmānam ātmani

अर्थ: सागर-तट पर खड़े होकर, बलराम ने परम पुरुष से एकत्व के योग को धारण किया, और अपनी आत्मा को अपनी ही आत्मा से जोड़कर, अपने मानव-स्वरूप को त्याग दिया। (स्कन्ध 11, अध्याय 30, श्लोक 26)



सागर-तट पर खड़े होकर, बलराम परम आत्मा से एकत्व के योग को धारण कर अपना मानव-स्वरूप त्याग देते हैं (श्लोक 26)।

पिप्पल वृक्ष के नीचे श्रीकृष्ण

अपने अग्रज के प्रस्थान को जानकर, श्रीकृष्ण समीप के एक पिप्पल वृक्ष के पास गए और शान्तिपूर्वक उसके तने से टिककर बैठ गए। वहाँ उन्होंने अपना तेजस्वी चतुर्भुज रूप प्रकट किया, और धूमरहित अग्नि के समान, अपने ही प्रकाश से समस्त दिशाओं का अन्धकार दूर कर दिया।

बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया ।

दिशो वितिमिराः कुर्वन् विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥

bibhrac catur-bhujam rūpam bhrājiṣṇu prabhayā svayā diśo vitimirāḥ kurvan vidhūma iva pāvakaḥ

अर्थ: अपना तेजस्वी चतुर्भुज रूप धारण किए, अपने ही तेज से प्रकाशित होते हुए, उन्होंने समस्त दिशाओं को धूमरहित अग्नि के समान अन्धकाररहित कर दिया। (स्कन्ध 11, अध्याय 30, श्लोक 28)

वर्षा-मेघ के समान श्याम, स्वर्ण-आभ रेशमी वस्त्र धारण किए, माल्याभूषित, तथा कौस्तुभ मणि से सुशोभित, वे परम शान्ति में बैठे थे, बायाँ चरण दाहिनी जाँघ पर रखे हुए, अपने नित्य आयुधों से — जो सजीव रूप में उनकी सेवा में उपस्थित थे — घिरे हुए (श्लोक २९-३२)।

शिकारी का बाण और भगवान् की कृपा

समीप ही, जरा नामक एक शिकारी अपने कार्य में लगा था, जिसका बाण-फलक उसी लौह-खण्ड से बना था जो ब्राह्मणों के मूसल के चूर्ण होने के पश्चात् शेष बचा था — वही लौह जो, इस तट पर बिखरकर, पहले ही वह घास बन चुका था जिसने यदुकुल का अन्त किया। धुँधले प्रकाश में एक चरण को मृग के मुख जैसा देखकर, उसने यही सोचकर कि उसे अपना शिकार मिल गया, बाण चला दिया और उस चरण को बींध दिया (श्लोक ३३)।

निकट आने पर, जरा को भय से विदित हुआ कि उसने मृग को नहीं, सबके स्वामी उस चतुर्भुज भगवान् को बींधा है। काँपते हुए, वह श्रीकृष्ण के चरणों में गिर पड़ा और क्षमा याचना करने लगा, स्वयं को पापी कहते हुए तथा प्रायश्चित्त में अपना प्राण भी अर्पित करते हुए (श्लोक ३४-३८)।



चतुर्भुज भगवान् को बीँधने का भान होते ही, शिकारी जरा भय से उनके चरणों में गिर पड़ता है, और श्रीकृष्ण केवल कोमलता से उत्तर देते हैं (श्लोक 39)।

किन्तु भगवान् के उत्तर में कोई क्रोध न था, केवल उस भयभीत आत्मा के प्रति कोमलता थी जिसने वही किया था जो स्वयं भगवान् ने चुपचाप विधान किया था।

श्रीभगवानुवाच

मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ।

याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥

śrī-bhagavān uvāca mā bhair jare tvam uttiṣṭha kāma eṣa kṛto hi me yāhi tvaṁ mad-anujñātaḥ svargaṁ su-kṛtinām padam

अर्थ: भगवान् ने कहा: “हे जरा, भयभीत मत हो; उठो। यह कार्य केवल मेरी ही इच्छा से सम्पन्न हुआ है। अब मेरी ही अनुमति से, सत्पुरुषों के धाम स्वर्ग को जाओ।” (स्कन्ध 11, अध्याय 30, श्लोक 39)

सान्त्वना पाकर, जरा ने भगवान् की परिक्रमा की और भेजे गए दिव्य विमान में स्वर्ग को चला गया, उसी की कृपा से जिसे उसने अपराधी समझा था (श्लोक ४०)।

दारुक को श्रीकृष्ण के अन्तिम वचन

दूर कहीं, भगवान् के सारथी दारुक अपने स्वामी को खोजते हुए निकले, और अन्ततः वायु में बहती तुलसी की सुगन्ध से उनका पता पाया। उन्हें वृक्ष के नीचे अपने सजीव आयुधों से घिरा बैठा देखकर, वे रोते हुए उनके चरणों में गिर पड़े। “हे प्रभो, मेरे नेत्रों ने केवल अन्धकार जाना है जबसे मैंने आपके चरण देखना बन्द किया है; मुझे कोई शान्ति नहीं मिलती, जैसे चन्द्ररहित रात्रि में कोई यात्री भटक जाए।” (श्लोक ४१-४३)

उनके बोलते-बोलते ही, गरुड़-चिह्नित रथ स्वयं आकाश में उठ गया, और दिव्य आयुध भी उठकर उसके पीछे हो लिए, दारुक विस्मय से देखते रह गए (श्लोक ४४-४५)।



दारुक के विस्मयपूर्वक देखते-देखते, भगवान् का रथ तथा उनके दिव्य आयुध स्वयं आकाश में उठ जाते हैं (श्लोक 44-45)।

तब श्रीकृष्ण ने शान्ति से उन्हें घर ले जाने का सन्देश दिया: कुटुम्बियों को परस्पर हुए विनाश का, बलराम के प्रस्थान का, तथा भगवान् की स्वयं की दशा का समाचार दें। अब कोई द्वारका में न रहे, क्योंकि भगवान् के त्यागते ही सागर नगरी को जलमग्न कर देगा; प्रत्येक परिवार अपना कुटुम्ब-सम्पत्ति समेटे, देवकी-वसुदेव को साथ ले, और अर्जुन के संरक्षण में इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान करे (श्लोक ४६-४८)।

दारुक को स्वयं भगवान् ने एक अन्तिम वचन दिया।

त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः ।

मन्मायारचितामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥

tvaṁ tu mad-dharmam āsthāya jñāna-niṣṭha upekṣakaḥ man-māyā-racitām etāṁ vijñayopāśamaṁ vraja

अर्थ: “तुम मेरे प्रति भक्ति में स्थिर रहो, ज्ञान में दृढ़ रहो, तथा आसक्तिरहित रहो; इस सम्पूर्ण सृष्टि को मेरी ही माया-रचित जानकर, शान्ति को प्राप्त हो।” (स्कन्ध 11, अध्याय 30, श्लोक 49)

इस प्रकार आदिष्ट होकर, दारुक ने भगवान् की श्रद्धापूर्वक परिक्रमा की, बार-बार प्रणाम किया, और भारी हृदय से किन्तु भगवान् के आशीर्वाद को अन्त तक सँजोए हुए द्वारका की ओर प्रस्थान किया (श्लोक ५०)।

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. यहाँ कुछ भी भगवान् की इच्छा से बाहर नहीं घटित होता। यदुओं का अन्त तथा भगवान् का अन्तर्धान उन पर आई विपत्ति नहीं, अपितु उस कार्य की पूर्ति है जिसके लिए वे अवतरित हुए थे (श्लोक २४-२५, ३९)।
2. एक प्राचीन शाप भी भगवान् के प्रयोजन की सेवा करता है। एक ऋषि के क्रोध से उत्पन्न लौह यदुओं के अन्त का साधन भी बनता है और भगवान् के चरण को छूने वाले बाण-फलक का भी — धर्म की कार्यप्रणाली से कुछ भी बाहर नहीं है (श्लोक २०-२१, ३३)।
3. मद तथा अहंकार सर्वश्रेष्ठों को भी पतित कर देते हैं। भगवान् के प्रिय वीर यदु भी मद तथा अहंकार के कारण एक अनचाहे विनाश में गिर गए — प्राप्त वरदानों के प्रति असावधानी के विरुद्ध एक चेतावनी (श्लोक १२-१४)।
4. योग अपने सच्चे स्वरूप में लौटने की कला है। परम के साथ एकत्व में लीन बलराम का शान्त प्रस्थान साधना के लक्ष्य को दर्शाता है: आत्मा को आत्मा में विश्राम देना (श्लोक २६)।
5. भगवान् अनजाने में अपनी इच्छा पूर्ण करने वाले को भी क्षमा करते हैं। जरा का भय तथा भगवान् का तत्काल, कोमल आश्वासन इस अध्याय का हृदय है — प्रमाण कि कोई भी सच्ची आत्मा उनकी कृपा से परे नहीं (श्लोक ३४-३९)।
6. अन्तिम वचन सदैव भक्ति, ज्ञान तथा शान्ति का होता है। दारुक को, भगवान् प्रत्येक भक्त के लिए एक शिक्षा छोड़ जाते हैं: उनके मार्ग में स्थिर रहो, ज्ञान में दृढ़ रहो, क्षणभंगुर माया से अनासक्त रहो, और शान्ति को प्राप्त हो (श्लोक ४९)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

हृदय के इस अध्याय में स्थिर हो जाने पर इसमें कुछ भी भयावह प्रतीत नहीं होता, क्योंकि इसमें कुछ भी भगवान् से पृथक् नहीं है। जिन्होंने कभी एक पर्वत को अपनी कनिष्ठिका पर उठा लिया था, वे अब सहजता से एक वृक्ष के नीचे बैठकर एक शिकारी के बाण को अपने चरण तक पहुँचने देते हैं — आहत होकर नहीं, अपितु अपनी ही इच्छा के अनुसार, अपनी देह त्यागते हुए। और जो क्षण सर्वाधिक भयावह प्रतीत होना चाहिए था — एक भयभीत शिकारी उसी के चरणों में गिरा हुआ जिसे उसने घायल किया है — वही इस स्कन्ध का सबसे कोमल क्षण बन जाता है: श्रीकृष्ण अपने लिए शोक करने को क्षण भर भी नहीं रुकते; उनका पहला वचन किसी और के भय के लिए सान्त्वना है। सम्भवतः यही वह गहनतम सत्य है जो भागवत भगवान् के विषय में हमें देता है — कि अपना स्वरूप त्यागते हुए भी, उनका सम्पूर्ण ध्यान उनके सम्मुख खड़ी आत्मा को उठाने में ही लगा रहता है। यदि हम यह सोचने लगें कि भक्ति का अर्थ भगवान् से प्रत्येक कष्ट से बचाए रखने की याचना करना है, तो यह अध्याय हमसे अधिक साहसिक माँगता है — कि हम उनकी व्यवस्था पर विश्वास रखें, चाहे वह हमें हानि-सी ही क्यों न प्रतीत हो, और यह कि, जरा के समान, उन्हें पहचानते ही हम सहज रूप से उनके चरणों में गिर जाएँ।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, जब कोई अप्रत्याशित घटना आपकी शान्ति भंग करे — कोई हानि, अचानक परिवर्तन, कोई बिगड़ी योजना — प्रतिक्रिया देने से पहले रुकिए, और स्मरण कीजिए कि भगवान् का हाथ वहाँ भी उपस्थित है, जैसा वह शिकारी के बाण में था। उस क्षण को प्रतिरोध करने के स्थान पर उन्हें अर्पित कीजिए, और जो भी उसका कारण प्रतीत हो उसके प्रति अपने हृदय को कोमल होने दीजिए, जैसे श्रीकृष्ण के वचन जरा के प्रति

कोमल हुए थे। अपनी आँखें मूँदिए और उनके पावन नाम का जप कीजिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” इस छोटे-से समर्पण में वही विश्वास निहित है जो भगवान् अपने प्रत्येक प्रेमी भक्त से चाहते हैं।

उपसंहार

इस गम्भीर त्रिंश प्रवचन में, भगवान् अपनी पार्थिव लीला को उसके निर्धारित अन्त तक ले आते हैं। भयंकर अपशकुनों से सचेत होकर, वे यदुओं को प्रभास भेजते हैं, जहाँ एक प्राचीन शाप मद तथा अहंकार के माध्यम से जागृत होकर कुल को ठीक उसी प्रकार लील जाता है जैसा नियति ने चाहा था। बलराम योग द्वारा अपने नित्य धाम लौट जाते हैं; और श्रीकृष्ण, पिप्पल वृक्ष के नीचे शान्ति में विराजमान, जरा के अनजाने बाण को केवल कृपा से स्वीकार कर उसे स्वर्ग की ओर आशीर्वाद देते हैं। दारुक को वे अन्तिम उपदेश देते हैं — भक्ति, ज्ञान तथा आसक्तिरहितता — इससे पूर्व कि उनका रथ तथा आयुध आकाश में उठ जाएँ। यहाँ कुछ भी हानि नहीं है: यह स्वयं भगवान् हैं, पूर्ण प्रेम तथा स्वतन्त्रता में, अपनी ही लीला को समापन तक ले जाते हुए।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, त्रिंश प्रवचन, पृष्ठ 660–664।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बन्ध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-30-yadu-vansh-ka-ant-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट